व्यंग्यः–

माँगना ही तो है ना..

शशांक मिश्र भारती

आज मैं अपने एक मित्र के कमरे में गया। वह अपने कमरे में एक पुरानी पत्रिका पढ़ रहे थे। पत्रिका में छपी कहानी का विषय यूं था, कि स्टेशन पर भीख मांगने वाले को एक जनाब ने यह कहकर पैसे देने से मना कर दिया; कि तुम हट्टे–कट्टे हो इस तरह से मांगते हुए तुम्हें शर्म नहीं आती, जबकि वही जनाब कुछ समय बाद अपनी सिगरेट सुलगाने के लिए इधर–उधर माचिस मांगते नजर आते हैं। क्या जमाना आगया है–अपने आप जीरो होकर भी हीरो बनने का प्रयास। दूसरा हीरो होकर भी जीरो बना दे जबरन। एक ओर भूख की पीड़ा की बात थी तो दूसरी ओर एक शौक वह भी अनावश्यक की पूर्ति।

वैसे इसमे आश्चर्य कैसा? गोस्वामी तुलसी दास ने लिखा है– पर उपदेश कुशल बहुतेरे....। अर्थात दूसरों को समझाते रहो उपदेश देते रहो । तरह–तरह के कानून–नियम प्रतिबन्धों को लाद दो। पर अपने पर नहीं, अपने लिए सुविधाओं को तीन गुना बना डालो। आवश्यकता न होने पर भी अपने लिए सर्वोच्च विधान तक बदल डालो। सामने वाले को क्यों किया, कैसे किया? का प्रश्न करने का अधिकार भी न दो। दिन–दहाड़े उठाईगीरी की व्यवस्था को सबसे ऊपर भेजो। लेकिन तुम क्या हो , तुम्हारी आवश्यकताएं क्या हैं न जान सकते और न कह सकते।

खैर, बात चल रही थी मांगने वालों की, इस विषय पर महाकवि घाघ ने बहुत पहले लिखा था– मांग ना आवै भीख, तो सुरती खाना सीख। कितनी तार्किकता थी। आज भी बदले रूप में चहुं ओर चरितार्थ हो रही है। बालक, युवा बृद्ध, घर, गलियों में, बसों, रेलों,, चौराहों, पान, किरानें की दूकानों, होटलों, ढाबों, शिक्षण–संस्थानों में घाघ की बात का गात बढ़ाने में अपना अमूल्य योगदान दे रहे हैं। यही नहीं कुछ लोग तो देश–विदेश की अन्यान्य एजेन्सियों, घोटालों, धोखाधड़ी, आयोजनों, राहत कार्यों के रूप में अग्नि में घृत सम गिर प्रज्ज्वलन क्षमता बढ़ा रहे हैं। अभी कुछ महीनों पहले हमारे देश में बाहर के देश से बहुत बड़ा देने वाला आने वाला था तो हमारे मांगने के अगुआ बन्धु ने अपना बड़ा कटोरा उसके सामने फैलाने के फेर में छोटी–छोटी कटोरियों में चौराहों पर खड़े हो तथाकथित नाम डुबोने वालों को कई दिन पहले ही दूर भगवा दिया था। वहीं कुछ(वोट) मांगने वालों से हम उनकी शिक्षा–दीक्षा प्रवृत्ति भी नहीं जान सकते हैं । हमारी भलाई के लिए उनके घर नोक झोंक घक्का–मुक्की घूंसा दिखाऊ, बहिष्कार तक हो जाता है पर मसला कहीं न कहीं अटकने से लटकता हुआ भटक सा जाता है जब अपनी अपने हित की बात हो तो इतिहास जानता है कि वो अपनी सुविधाओं की वृद्धि सर्वसम्मति से करते हैं। धन्य हैं हम और हमारा देश जहां इतनी सारे लोग लगे हैं अपनी विरासत को सार्थक करने में । महाकवि घाघ की कहावत को इस विशेष तरीके से अपना कर्त्तव्य समझ सबके सपने सच कर रहे हों।

वैसे यदि पुर्नजन्म के सिद्धान्त को पुष्ट करते हुए घाघ धरा पर अवतरित हो जाये तो उनके लिए समस्या खड़ी हो जायेगी। पहले केवल सुरती पर लिखकर छुट्टी पा ली। पर आजकल क्या–क्या दर्शायेंगे। मुझे तो लगता है कि अधुनातन महाकाव्य लिख जायेगा इतनी लम्बी सूची बन चुकी है मांगने वालों की। जिसकी याद कर लंका में अतिश्योक्ति अलंकार में बढ़ी बजरंगी की पूँछ का स्मरण हो आता है। सबसे अधिक महत्व तो मेरी समझ में गुटका को देना पड़ेगा उसके बाद गांजा, भांग, चरस, शराब, बीड़ी, सिगरेट, आदि–आदि तो आयेंगे ही। सुबह का अखबार, पत्रिकाओं, लेखनी, चायपत्ती, नमक, चीनी, माचिस, ऋण भुगतान के लिए ऋण, अपराधी के लिए मांगपत्र तक न विषय बनें मुझे कोई भ्रान्ति नहीं होगी।हो सकता है कि वह नये रूप में लिखें–मांग न आवै भीख तो सुरती..... सीख। हां जी सीख लिख दें जिससे सभी का काम चल जायेगा। वैसे कुछ पदच्युत–पदासीन इस क्रिया हेतु आशीर्वाद भी मांगने लगे हैं।

कभी हमारे यहां का राष्ट्रीय पर्व मक्कारी हुआ करता था। एक–दूसरे की ओर हाथ पर हाथ रखकर देखते रहते थे । पहले वह करे तब मैं करूंगा। वह क्यों नहीं करता है। मैं ही क्यों करता रहूं। तुम चलो आगे–आगे मैं पीछे–पीछे आता हूं। गिलहरी कौआ की भांति हरी डाल पर बैठकर चुपड़ी रोटी खाता हूं। इसी आलस के रूप में हम लोगों ने एक बार इतना बड़ा तम्बू लगवा दिया।कि उसको उखाड़ने में दो साल लग गये। इतनी अधिक तम्बू की रस्सियां, कीलें, बल्लियां थीं वैसे यह बात और है कि उस तम्बू का कपड़ा हमारा ही था हमारे ही लोग गाड़ने–मांगने वाले थे।केवल रहने–खाने वाले बाहर से आये थे। वो भी बुलाने पर आये थे। उनके लिए हम ही अपनों का गला दबा–दबा उनको मजबूत करते रहे।जाते–जाते भी तो इतनी कीचड़ हमारे मन– मस्तिष्क में छोड़ गये जिसने हमारे मूल–अस्तित्व इतिहास साहित्य भाषा– संस्कृति को विस्मृत में डाल दिया। उसके परिणाम स्वरूप हमारी आज तक मांगने की आदत मजबूत हो रही है। टीपू के साधारण सैनिकों के राकेट हमले से झाड़ी में छुपकर जान बचाने वाले को हम महान योद्धा मान बैठे। लुटेरे–संस्कृति विनाशक आदर्श बन गए।देश के लिए जीवन भर कष्ट भोगने– फांसी पर झूलने वालों के लिए न समय है न अगली पीढ़ी को विधिवत जानकारी देने की इच्छा। ऊपर से हम आजकल बड़ी शान से कहते हैं कि हम सवा अरब हो गये। प्रतिदिन एक आस्ट्रेलिया बना देते। लेकिन अकमर्ण्यता छोड़ी नहीं जाती। मलूकदास जी के शब्दों–

अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम।
दास मलूका कह गये सबके दाता राम।।

देश –समाज का कल्याण चाहने वाले राष्ट्र को सर्वोपरि मानने वाले यदि कुछ अधिक अंश में होते तो विश्व पूंजीवाद को न संस्कृति वाद को देखता।त्रेता में शासक के रूप में स्वंय त्याग कर मर्यादा पुरूषोत्तम राम ने सुधारों का अपने से प्रारम्भ किया। जबकि यहां पर मुख्य कार्य का पद सम्मान मांगने को ही दिया जाये तो कोई अनुचित न होगा। इच्छाओं से लेकर भिक्षाओं तक मांगना ही तो है ना।

–''उपरोक्त आलेख मेरा अपना स्वरचित, व *जनप्रवाह सा.ग्वालियर सं.डा.श्रीमती मधुरानी सिंह राठौड़ दि.1से 7 जुलाई 2012 पृ..06* प्रकाशित है।''

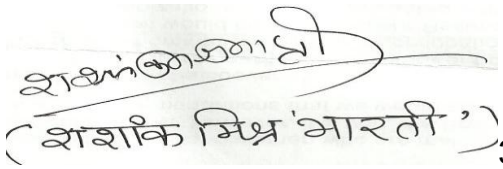

30.8.2012

शशांक मिश्र भारती हिन्दी सदन,बड़ागांव,शाहजहांपुर,242401उ.प्र.
ईमेलः–shashank.misra73@rediffmail.com